इकाई 24 व्यापार के कार्मिक, और वाणिज्यिक गतिविधियां

इकाई की रूपरेखा

24.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस काल के व्यापार में संलग्न व्यापारी वर्ग और वाणिज्यिक गतिविधियों के बारे में जान सकेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- व्यापारिक गतिविधियों में संलग्न प्रमुख व्यापारिक समुदायों के बारे में जान सकेंगे;
- वाणिज्य में **दलालों**, **सर्राफों** और **महाजनों** की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे; और
- हुंडी, वाणिज्यिक ऋण, ब्याज की दर और व्यापारिक भागीदारी जैसे पक्षों का मूल्यांकन कर सकेंगे।

24.1 प्रस्तावना

विवेच्य काल के अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार का आप पहले ही अध्ययन कर चुके हैं। देश में स्थानीय रूप से व्यापार करने वाले छोटे व्यापारी भी थे और समुद्र व्यापार में संलग्न बड़े व्यापारी भी मौजूद थे। पूरी वाणिज्यिक प्रक्रिया में, व्यापारियों के खास विशेषीकृत समुदाय, दलाल और सर्राफ विभिन्न स्तरों पर अपनी भूमिका निभाते थे।

बड़े पैमाने पर व्यापार होने के कारण कुछ मौजूद प्रथाएं और संस्थाएं मजबूत हुईं और कुछ नये रूप सामने आए। बैंकिंग व्यवस्था, हुंडी और ऋण लेना तथा देना कुछ प्रमुख विशेषताएं थी। व्यापारिक भागीदारी और बीमा का भी प्रचलन था।

24.2 व्यापार के कार्मिक

इस भाग में हम भारतीय बाजारों में काम कर रहे व्यापारियों, सर्राफों, महाजनों और

दलालों पर विचार करेंगे। व्यापारिक गतिविधियों के बढ़ने से इन व्यवसायों की ओर काफी लोग आकृष्ट हुए। हालांकि उपर्युक्त व्यापारिक समुदायों का विभाजन बिल्कुल अलंध्य नहीं था। एक ही साथ एक व्यक्ति दो या अधिक भूमिकाएं निभा सकता था। यहां हम इस काल के व्यापार और वाणिज्य में इन समुदायों की अलग-अलग भूमिकाओं के आधार पर उनका अलग-अलग अध्ययन करेंगे।

24.2.1 व्यापारी

सैद्धांतिक तौर पर वैश्यों से व्यापार करने की उम्मीद की जाती थी पर व्यवहार में अलग-अलग पृष्ठभूमि के लोग व्यापार में संलग्न पाये जाते हैं। अपने अध्ययन के इस काल में हम पाते हैं कि किसी खास प्रदेश में कुछ खास समुदायों और जातियों का वर्चस्व होता था। बंजारे : हमारे स्रोतों में व्यापारी समुदाय के रूप में बंजारों का उल्लेख मिलता है। ये एक क्षेत्र में गांवों के बीच और गांवों और शहर के बीच व्यापार करते थे, कभी-कभी ये अन्तर क्षेत्रीय स्तर पर भी व्यापार करते थे। वे ग्रामीण शहरी व्यापार की महत्वपूर्ण कड़ी थे। बंजारे अपनी व्यापारिक गतिविधियां अनाज, दाल, चीनी, नमक आदि वस्तुओं तक ही सीमित रखते थे। उनके पास बड़ी संख्या में पशु (खासकर सामान ढ़ोने के लिए बैल) होते थे और वे लोग घूम-घूम कर सामान बेचते और खरीदते थे। **तुजुक-ए-जहांगीरी** में जहांगीर कहता है "इस देश में बंजारा एक खास वर्ग है जिनके पास हजार के आसपास बैल होते हैं। वे गांव से शहर अनाज लाते हैं और सेना के साथ भी चलते हैं।" आमतौर पर बंजारे अपने परिवार और घर के सामान के साथ घूमते थे। इधर-उधर घूमते इनके इस समुदाय को टाण्डा कहते थे। प्रत्येक टाण्डा का एक प्रधान होता था जिसे नायक कहते थे। कभी-कभी एक टाण्डा में 600-700 लोग (महिलाओं और बच्चों को मिलाकर) होते थे और प्रत्येक के पास अपने बैले होते थे।

बंजारे हिंदू भी थे और मुसलमान भी। कुछ विद्वान उन्हें उनके द्वारा व्यापार की जाने वाली वस्तुओं, अनाज, दाल चीनी, नमक और लकड़ी के आधार पर विभाजित करते हैं।

बंजारे उत्तर भारत के कई भागों में व्यापार करते थे पर इसी प्रकार के और भी व्यापारी थे, जिन्हें दूसरे नामों से जाना जाता था। सिंध में इसी प्रकार का व्यापारी वर्ग कार्यरत था, जिसे नामधारी कहते थे। हिमालय और मैदानी इलाकों के बीच भोटिया नामक घुमंतु व्यापारी कार्यरत थे।

विभिन्न प्रदेशों में व्यापारी

एक महत्वपूर्ण वैश्य उपजाति, बनिया उत्तर भारत और दक्खन का महत्वपूर्ण व्यापारी वर्ग था। वे हिंदु और जैन (मुख्य रूप से गुजरात और राजस्थान में) धर्म मानने वाले थे। पंजाब में खत्री और गोलकुंडा में कोरनाती भी इसी वर्ग के लोग थे।

बनिया शब्द, संस्कृत शब्द वणिक अर्थात् व्यापारी से गृहीत है। बनिया समुदाय अपने नाम के साथ उपनाम भी लगाया करता था जिससे उनके मूल स्थान का पता चलता था। अग्रवालों का मूल स्थान अमरोहा (अभी हरियाणा में) और ओसवालों का मारवाड़ में ओसी था। मारवाड़ के व्यापारियों की संख्या सबसे अधिक थी और इन्हें मारवाड़ी के नाम से जाना जाता था। वे देश के सभी हिस्सों में फैले हुए थे और हमारे अध्ययन काल के दौरान सर्वप्रमुख व्यापारी समुदाय था। इन व्यापारियों के बीच घनिष्ठ जातिगत बंधन था। इनकी अपनी परिषद् (महाजन) भी होती थी।

समकालीन यूरोपीय यात्रियों (लिनशोटेन 1538-39 टेवरनियर, 1640-67) ने बनियों की व्यापारिक निपुणता की दाद दी थी और उनके लेख बही संबंधी योग्यता की सराहना की थी।

पंजाब में खत्री प्रमुख व्यापारी समुदाय था। सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरू नानक भी खत्री थे। इनमें से कइयों ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इस समुदाय में हिंदू भी थे, मुसलमान भी और सिख भी। तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली, पंजाब और सिंध में

कार्यरत मुलतानी प्रमुख व्यापारी समुदाय था। हमारे अध्ययन काल (1550-1750) में भी उनका अक्सर उल्लेख मिलता है।

बोहरा गुजरात के महत्वपूर्ण व्यापारी थे। वे ज्यादातर मुसलमान थे। वे शहरी समुदाय थे और मुख्य तौर पर गुजरात और अन्य पश्चिमी इलाकों में बसे हुए थे। गुजरात के अलावा उज्जैन और बुरहानपुर में भी उनकी कुछ बस्तियां थीं। मुल्ला मुहम्मद अली और अहमद अली जैसे बोहरा व्यापारियों के पास लाखों रुपयों की सम्पदा थी। पश्चिमी तट पर व्यापार में संलग्न मुसलमान व्यापारी समुदायों में खोजाह और गुजरात के कच्छी (कच्छ के) मेमन भी प्रमुख थे।

दक्षिण भारत

इस उपमहाद्वीप के दक्षिणी भाग में कई व्यापारिक समुदायों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। चेटटी ऐसा ही एक समुदाय था। यह शब्द संस्कृत **श्रेष्ठी** (सेठ) से ग्रहीत है। संभवतः चेट्टी काफी धनाड्य व्यापारी थे। कोरोमंडल तट से लेकर उड़ीसा तक के व्यापारियों को क्लिंग के नाम से जाना जाता था। कोमती भी एक व्यापारी वर्ग था। वे मुख्यतः कपड़े के दलाल थे और देश के अंदरूनी इलाकों से बंदरगाहों तक माल लाने का काम करते थे। वे मुख्यतः तेलुगु भाषी थे।

चेटटी की तरह चूलिया भी एक व्यापारी समुदाय था जो चार उप समुदायों में विभक्त था। इनमें मरककयर सबसे धनाड्य व्यापारी थे और ये तटीय और दक्षिण-पूर्वी एशियाई व्यापार में संलग्न थे। यह काफी गतिमान समुदाय था और इनमें से कई श्रीलंका, मालदीव, मलक्का, जोहोर, जावा तट, स्याम और बर्मा जाकर बस गए थे। भारत में दक्षिण में, कोरोमंडल, मदुरा, ओउद्दालोर, पोर्टो नोवा, नागोल, नाग-पट्टणम, कोयलपट्टनम आदि स्थानों में सक्रिय थे। वे मुख्य रूप से वस्त्र, सुपारी, मसाले, अनाज, सूखी मछली, नमक, मोती और बहुमूल्य रत्नों का व्यापार करते थे।

कोरोमंडल से मालाबार और श्रीलंका तक छुर्तियन पारव नामक समुदाय व्यापार में सक्रिय था। तटीय व्यापार और दलाली में उन्हें विशेषज्ञता प्राप्त थी।

मुसलमानों में, गोलकुंडा मुसलमान समुद्रपारीय व्यापार में संलग्न थे। मद्रास के दक्षिण और बंगाल प्रदेश में बंगाल की खाड़ी में वे प्रमुख व्यापारी थे। भारतीय अरब मूल के मोपिल्ला मुसलमान भी इस क्षेत्र में कार्यरत महत्वपूर्ण व्यापारी थे।

मद्रास प्रदेश में गुजराती व्यापारी भी कार्यरत थे।

विदेशी व्यापारी

इस काल के लगभग सभी वाणिज्यिक केन्द्रों में विदेशी व्यापारियों की उपस्थिति का उल्लेख मिलता है। इनमें यूरोपीय व्यापारियों की व्यापारिक गतिविधियों की चर्चा इकाई 23 में की जा चुकी है। अन्य विदेशी व्यापारियों में अरमेनियन सर्वप्रमुख हैं। वे कपड़े से लेकर तम्बाकू तक अनेक प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करते थे। वे बंगाल बिहार और गुजरात में अधिक सक्रिय थे। खुरासानी, अरब और ईराकी भी अक्सर भारतीय बाजारों में काफी संख्या में आते रहते थे।

बोध प्रश्न 1

1) अंतर्देशीय व्यापार में बंजारों की भूमिका का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

....

....

2) भारत के विभिन्न भागों में कार्यरत चार व्यापारी समुदायों का नाम बताइए।

....

....

....

....

....

24.2.2 महाजन और सर्राफ

उत्तर भारत के बड़े भाग में परम्परागत व्यापारी गण व्यापार के साथ-साथ ब्याज पर रुपया भी देते थे। गांवों में परम्परागत बनिया, किसानों को, राजस्व का भुगतान करने के लिए भी उधार दिया करता था।

सर्राफ भी व्यापार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। उनके तीन कार्य थे: 1) मुद्रा विनिमयदाता; 2) बैंकर का काम करना; 3) सोना, चांदी और गहने के व्यापारी। यहां हम पहले दो कार्यों पर चर्चा करेंगे तीसरा कार्य किसी भी अन्य वस्तु के व्यापार की भांति ही था।

सर्राफ सिक्के की धातुगत शुद्धता और वजन के पारखी और विशेषज्ञ माने जाते थे। वे धातु की मुद्रा की विनियम दर भी निर्धारित करते थे। टैवेरनियर के अनुसार "भारत के किसी गांव में अगर बहुत **सर्राफ** न हो तो निश्चय ही एक काफी छोटा गांव होगा। वह बैंकर के रूप में लोगों के पैसे का लेन-देन करता था और हुंडियां भी जारी करता था।"

जैसा कि हमने इकाई 20 में अध्ययन किया है सर्राफ मुगल मुद्रा ढ़लाई व्यवस्था का भी एक अंग था। प्रत्येक टकसाल में एक **सर्राफ** होता था जो धातु की शुद्धता और ढ़लने के बाद सिक्के की शुद्धता की जांच करता था।

बैंकर के रूप में लोगों का वे धन सुरक्षित रखते थे और ब्याज पर ऋण देते थे। वे हुंडी जारी करते थे और दूसरों द्वारा जारी हुंडियों के बदले अपना कमीशन काट कर भुगतान भी करते थे (इस पक्ष पर हम इसी इकाई में आगे विस्तार के साथ विचार करेंगे)।

24.2.3 दलाल

भारत में तुर्की विजय के बाद के काल में दलाल एक विशेषीकृत वाणिज्यिक वर्ग के रूप में कार्यरत थे। वे विभिन्न वाणिज्यिक गतिविधियों और लेन-देन में मध्यस्थ के रूप में कार्य करते थे। अन्तर प्रान्तीय और विदेशी व्यापार के बढ़ने से उनकी भूमिका अपरिहार्य हो गई। दूर से आये हुए व्यापारी और विदेशी व्यापारी उन पर काफी निर्भर रहते थे। ए.जान. कैसर के अनुसार विदेशी व्यापारी यहां के उत्पादन के केन्द्र, विपणन की पद्धति और भाषा नहीं जानते थे। उन्हें इस सबके लिए स्थानीय दलालों पर निर्भर करना पड़ता था। भारत में दलालों की जरूरत कुछ कारणों से महत्वपूर्ण हो गई थी। वे इस प्रकार हैं:

1) एक ही वस्तु के उत्पादन के केन्द्र पूरे भारत में फैले हुए थे;
2) प्रत्येक केन्द्र का उत्पादन सीमित था (कुछ केन्द्र खास वस्तुओं का ही उत्पादन करते थे); और
3) एक ही बाजार में एक हीं वस्तु के काफी खरीददार होते थे। दलालों की सहायता से लेन-देन किए जाने के कई प्रमाण मिलते हैं।

इंग्लिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के दस्तावेजों से पता चलता है कि उन्होंने अपने व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में भी दलालों को नियुक्त किया था। फ्रायर (17वीं शताब्दी) के अनुसार दलाल के बिना देशी या विदेशी कोई भी व्यापारी व्यापार नहीं कर सकता था। "ओविंग्टन (1690 ई.) ने भी टिप्पणी की है कि "कम्पनी की वस्तुओं को बेचने और खरीदने के लिए बनिया जाति के दलालों को नियुक्त किया जाता था, जो वस्तुओं के मूल्य और गुणों के पारखी होते थे।"

मैनरीक (1640 ई.) बताता है कि पटना में लगभग 600 दलाल और मध्यस्थ थे। सूरत, अहमदाबाद, आगरा और अन्य तटीय शहरों और बड़े विणिज्यिक केंद्रों में उनकी संख्या अवश्य ही अधिक रही होगी।

विदेशी बंदरगाहों पर भी भारतीय दलाल मौजूद होते थे। वे गोम्बरून (बन्दर अब्बास) बसरा, बन्दर रिग आदि स्थानों में भी कार्यरत थे। कभी-कभी पूरा परिवार भागीदारी में दलाली का काम करता था। हमें भीमजी पारक, एक प्रमुख दलाल, के बारे में जानकारी मिलती है कि वह अपने भाइयों के साथ मिलकर दलाली का काम करता था। इस व्यापार के लाभ में उसके पास 8, कल्याणदास के पास 5, केस्सों और विटटलदास के पास 4-4 हिस्से थे।

ए. जान. कैसर दलालों को चार कोटियों में विभक्त करते हैं :

1) कम्पनी या व्यापारियों द्वारा नियुक्त दलाल केवल उनके लिए कार्य करते थे;
2) कई ग्राहकों के लिए स्वतंत्र रूप से काम करने वाले दलाल;
3) वे जो तदर्थ आधार पर दलाल ठेकेदार के रूप में काम करते थे; और
4) वाणिज्यिक केंन्द्रों पर खरीद और बिक्री को पंजीकृत करने के लिए राज्य द्वारा नियुक्त दलाल।

वस्तुओं की विशेषता के आधार पर स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहे दलालों को कई समुदायों में विभक्त किया जा सकता है। कई दलाल किसी एक वस्तु की ही दलाली किया करते थे और इसके विशेषज्ञ माने जाते थे जैसे रेशम, शोरा, सूती कपड़ा, नील आदि। कुछ दलाल एक से अधिक वस्तुओं की दलाली करते थे। कुछ दलाल प्रतिष्ठित दलालों के उप दलाल या मातहत दलाल के रूप में कार्य करते थे।

दलालों का शुल्क या कमीशन नियत नहीं होता था। यह वस्तु विशेष, सौदा तय करने में दलाल के परिश्रम या वस्तु प्राप्त करने में लगे श्रम आदि पर निर्भर करता था। आम लेनदेन में दलाली कुल मूल्य का दो प्रतिशत होती थी। प्रत्येक पक्ष (बेचने वाला और खरीददार) से एक प्रतिशत की दर से शुल्क वसूला जाता था।

नियमित रूप से नियुक्त दलालों को नियत वेतन और लेनदेन में कुछ कमीशन भी मिलता था। हमें उनकी कुल आय का पता नहीं है। हालांकि इंग्लिश कम्पनी के कुछ दस्तावेजों को देखने से पता चलता है कि उनके दलालों को 10 रुपये से 38 रुपये प्रतिमाह की दर से वेतन दिया जाता था।

अपने ग्राहकों से माल लेने और बेचने के अलावा दलाल उत्पादन की प्रक्रिया और संगठन में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे। व्यापारियों द्वारा कारीगरों को दी जाने वाली अधिकांश अग्रिम राशि इन दलालों के माध्यम से ही दी जाती थी।

बोध प्रश्न 2

1) सर्राफों की विभिन्न भूमिकाओं पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

2) दलाल कौन थे? विभिन्न प्रकार के दलालों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

24.3 वाणिज्यिक गतिविधियां

इस भाग में हम इस काल के व्यापार और वाणिज्य से जुड़ी विभिन्न गतिविधियों पर विचार करेंगे।

24.3.1 हुंडी

इस काल में **हुंडी** मुद्रा विनिमय का प्रमुख साधन हो गई थी। **हुंडी** कागज पर लिखा एक वचन पत्र होता था जिसके द्वारा किसी निर्धारित समय और स्थान पर लिखी गई राशि देने की व्यवस्था की जाती थी। इस प्रथा का आरंभ वाणिज्यिक कार्यों के लिए मुद्रा के रूप में अधिक धन को लेकर जाने वालों के खतरे को ध्यान में रखकर हुआ। व्यापारी अपनी राशि किसी खास स्थान पर **सर्राफ** के पास जमा कराकर **हुंडी** ले लिया करते थे। व्यापारी अपने गंतव्य स्थान पर यह **हुंडी** सर्राफ के प्रतिनिधि को देकर अपनी राशि वापस ले सकता था। इससे धन का स्थानांतरण आसान और सुरक्षित हो गया। शनैः शनैः **हुंडी** स्वयं लेनदेन का आधार बन गयी। किसी लेनदेन में इसे प्रस्तुत किया जा सकता था। इसे अनुमोदित करने के बाद बाजार में बेचा या खरीदा जा सकता था।

इरफान हबीब के अनुसार "**हुंडी** के लेन-देन का इतना अधिक प्रचलन हो गया कि अक्सर व्यापारिक लेनदेन में नगद भुगतान के स्थान पर **हुंडी** ली और दी जाने लगी।" इस प्रक्रिया में यह भुगतान का माध्यम बन गई।

हुंडी का प्रयोग इतना व्यापक था कि राजकोष और राज्य भी इसका उपयोग करते थे। इसके कई उदाहरण मिलते हैं। 1599 में राजकोष ने दक्कन में सेना को 3,00,000 रुपये **हुंडी** के द्वारा भेजे। गोलकुंडा (10,00,000 रुपये) और घक्कर के शासक (50,000 रुपये) ने मुगल बादशाह को अपना नजराना **हुंडी** के रूप में भेजा।

हमें इस बात के भी सबूत मिले हैं कि प्रांतीय पदाधिकारियों को **हुंडियों** के जरिए राजस्व स्थानान्तरित करने का निर्देश दिया जाता था। यहां तक कि वरिष्ठ कुलीन भी अपने व्यक्तिगत धन के स्थानान्तरण के लिए **सर्राफों** की सहायता लेते थे। बिहार के राज्यपाल मुकर्रब खां ने पटना से आगरा स्थानान्तरित होते समय पटना के **सर्राफ** को 3,00,000 रुपये आगरा पहुंचाने के लिए दिए थे।

सर्राफ के अतिरिक्त कई बड़े व्यापारी भी **हुंडी** जारी करते थे। प्रमुख वाणिज्यिक स्थानों पर इन व्यापारियों और **सर्राफों** के प्रतिनिधि रहा करते थे। कभी-कभी एक परिवार के सदस्य (पिता, पुत्र, भाई, भतीजा) एक दूसरे के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते थे। बड़े प्रतिष्ठानों के प्रतिनिधि विदेशों में भी होते थे।

सर्राफ प्रत्येक **हुंडी** के लिए शुल्क लिया करता था। विनिमय के कमीशन की दर सूद की दर और विनिमय अवधि पर निर्भर करती थी। **हुंडी** जारी करने से **हुंडी** वापस करके राशि वापस लेने तक के दिन की अवधि गिनी जाती थी। **हुंडी** जारी करने और इसके परिपक्व

होने के समय मुद्रा की उपलब्धता के आधार पर भी दर ऊपर नीचे होती रहती थी। अगर मुद्रा की उपलब्धता अच्छी होती थी तो दर गिर जाती थी। अभाव की स्थिति में दर ऊंची हो जाती थी। इरफान हबीब के अनुसार, "एक स्थान पर ज्यादा भुगतान करने पर सर्राफ के पास नगद की कमी हो जाती थी और दूसरे स्थान पर नगद की उपलब्धता ज्यादा हो जाती थी। इस स्थिति में जहां नगद की कमी होती थी वहां नगद लेने को प्रोत्साहित किया जाता था और जहां नगद की उपलब्धता ज्यादा होती थी वहां नगद देने को प्रोत्साहित किया जाता था। इसके कारण विनिमय दर में भी परिवर्तन होता रहता था।"

एक सामान्य जानकारी के लिए यहां कुछ विनिमय दरों का उल्लेख किया जा रहा है। आमतौर पर पटना से आगरा की हुंडी के लिए 1½ प्रतिशत और पटना से सूरत के लिए 7-8 प्रतिशत शुल्क लिया जाता था। 1622 में अहमदाबाद से बुरहानपुर के लिए हुंडी शुल्क 7¼ प्रतिशत था।

24.3.2 बैंकिंग

सर्राफ हुंडी जारी करने के साथ-साथ अपने पास दूसरों की राशि भी जमा करते थे। जमाकर्ता की मांग पर यह राशि उसे वापस दे दी जाती थी। जमाकर्ता को जमा राशि पर ब्याज भी मिलता था। जमाकर्ता को दी जाने वाली ब्याज की दर बदलती रहती थी। 1645 ई. में आगरा में और 1630 ई. में सूरत में ब्याज की दर साढ़े नौ प्रतिशत प्रति वर्ष थी। बैंकर जमा राशि का उपयोग अधिक ब्याज पर ऋण देकर किया करता था। ऐसे कई हवाले मिले हैं जहां राज्य अधिकारी राजकोष से इन बैंकरों को राशि दिया करते थे। बंगाल के जगत सेठ के बारे में लिखते हुए तपन राय चौधरी कहते हैं कि "उसकी भौतिक समृद्धि का मूल कारण यह था कि वे बंगाल राजकोष के धन का उपयोग करने की स्थिति में थे और इस धन को ब्याज पर दे सकते थे।"

सुजान राय के (1694 ई.) अनुसार लेन-देन में **सर्राफ** ईमानदार होते थे। यहां तक कि अनजान आदमी भी उनके पास हजारों रुपये जमा करके निश्चिंत हो सकता था और आवश्यकता के समय वापस ले सकता था।

24.3.3 सूदखोरी और ब्याज की दर

व्यक्तिगत जरूरतों और वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए पैसा उधार लेने का आम प्रचलन था। अधिकांश व्यापार ब्याज पर लिए पैसे से ही होता था। आमतौर पर सर्राफ और व्यापारी दोनों ही पैसा उधार देने का काम करते थे। कभी-कभी पैसा उधार देने का काम एक अलग कोटि का वाणिज्यिक वर्ग करता था जिन्हें साह कहा जाता था। ऋण विभिन्न उद्देश्यों के लिए लिया जाता था। किसान राजस्व के भुगतान के लिए ऋण लिया करते थे और कटाई के समय ऋण चुकाया करते थे। कुलीन और जमींदार अपने रोजमर्रा के खर्च के लिए ऋण लिया करते और राजस्व वसूली के समय भुगतान किया करते थे। व्यापारिक उद्देश्यों के लिए ऋण लेना भी आम बात थी।

कम ऋणों पर सूद की दर के निर्धारण के बारे में जानना जरा मुश्किल है। यह व्यक्ति की जरूरत, बाजार में उसकी साख और सौदेबाजी करने की उसकी शक्ति पर निर्भर करता था। तपन राय चौधरी के अनुसार 18वीं शताब्दी में बंगाल के किसान 150 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से भी ऋण लिया करते थे। वाणिज्यिक ऋण पर अलग-अलग प्रांतों में अलग-अलग ब्याज दर होती थी। हमारे स्रोतों में प्रति महीने की दर से ब्याज का उल्लेख मिलता है। इरफान हबीब के अनुसार प्रति महीने की दर से ब्याज के उल्लेख का मतलब था कि ऋण अल्प-अवधि के लिए लिया और दिया जाता था।

1620-21 में पटना में सूद की दर व प्रतिशत प्रतिवर्ष होने का उल्लेख मिलता है। 1680 के आसपास यह 156 प्रतिशत से भी अधिक हो गया मालूम होता है। 1679 ई. में कासिमबाजार में प्रचलित सूद की दर प्रतिवर्ष 15 प्रतिशत बताई गई है जबकि इसी समय यह दर मद्रास में 8 प्रतिशत और सूरत में 9 प्रतिशत थी। ब्रिटिश कम्पनी के प्रतिष्ठान

ब्याज की दर पर नजर लगाए रखते थे और जिस प्रांत में ब्याज की दर कम होती थी उस प्रांत से ऋण लेकर यह राशि दूसरे प्रांतों में भेज दिया करते थे। 17वीं शताब्दी के दौरान आगरा और सूरत में ब्याज की दर प्रतिवर्ष 6 से 12 प्रतिशत थी। कोरोमंडल तट पर यह दर 18 प्रतिशत से 36 प्रतिशत तक थी।

विभिन्न स्थानों पर ब्याज की दर की भिन्नता साबित करती है कि उस समय तक वित्तीय बाजारों का एकीकरण नहीं हो सका था।

पोत बंधक ऋण

लंबी दूरी के समुद्री व्यापार में कई प्रकार की अनिश्चिताएं और खतरे थे। इन अनिश्चितताओं के कारण पोत बंधक ऋण की शुरुआत हुई। यह एक प्रकार का सट्टेबाजी निवेश था जो उस काल में काफी प्रचलित था। इसमें ब्याज की दर 14 से 60 प्रतिशत तक होती थी। यह राशि किसी खास स्थान को जा रहे जहाज में निवेशित की जाती थी। ब्याज की दर यात्रा विशेष के खतरे पर निर्भर करती थी। यात्रा या सभी खतरों और नुकसान से ऋणदाता ही प्रभावित होता था।

24.3.4 भागीदारी

भागीदारी में व्यापारीगण अपने संसाधनों को एक साथ मिलाकर व्यापार करते थे। कुछ लोग मिलकर व्यापार की योजनाएं बनाया करते थे। अकबर के शासनकाल में दो कुलीनों **नवाब कुतुब खां और नवाब किलिच खां** ने जहाज बनवा कर संयुक्त रूप से व्यापार किया था। बनारसीदास ने 1611-16 ई. में जवाहरात के व्यापार में अपने भागीदार का उल्लेख किया है। यहां तक कि दलाल भी भागीदारी में काम करते थे। 1662 में दो दलाल छोटा ठाकुर और सूरत के सामजी ने संयुक्त रूप से फ्लावर नामक एक जहाज हासिल किया और उसे यात्रा के लिए सुसज्जित किया। कभी-कभी दलाल भी संयुक्त रूप से व्यापार करते थे।

24.3.5 बीमा

उस समय सीमित रूप में बीमा नामक वाणिज्यिक प्रथा भी भारत में प्रचलित थी। कई मामलों में सर्राफ माल को सुरक्षित रूप से पहुंचाने की जिम्मेदारी ले लेते थे। अंग्रेजी कम्पनी के दस्तावेजों में भी अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार में वस्तुओं के बीमा का उल्लेख मिलता है। समुद्र में जहाज और उस पर लदे सामान दोनों का बीमा होता था। कारखाने के दस्तावेजों में बीमा दर का उल्लेख भी मिलता है। 18वीं शताब्दी तक यह प्रथा अच्छी तरह स्थापित हो चुकी थी और सब जगह प्रचलित थी। विभिन्न गंतव्य स्थानों के लिए और विभिन्न वस्तुओं के लिए बीमा दरों का भी उल्लेख किया गया है। समुद्र के रास्ते जाने वाले माल की बीमा दर जमीन के रास्ते जाने वाले माल की बीमा दर से ज्यादा थी।

24.4 व्यापारी, व्यापारिक प्रतिष्ठान और राज्य

हम इकाई 20 और 23 में पढ़ चुके हैं कि राज्य द्वारा विभिन्न व्यापारिक गतिविधियों पर कर लगाया जाता था। माल इधर-उधर ले जाने के लिए भी व्यापारियों को कर और चुंगी देनी पड़ती थी। राज्य की कुल आय में इन स्रोतों से होने वाली आय भू-राजस्व की तुलना में काफी कम थी।

शहर वाणिज्यिक गतिविधियों के केन्द्र होते थे। अतः प्रशासनिक अधिकारी इस बात का ख्याल रखते थे कि व्यापारिक गतिविधियों में कोई अड़चन न आए। कानून और व्यवस्था तथा शांति और सुरक्षा से बेहतर व्यापारिक माहौल बनता था। यह जिम्मेदारी कोतवाल और शहर में मौजूद उसके कर्मचारियों की थी।

रोजमर्रा के कामकाज, व्यापार से संबंधित नियम और कायदे व्यापारिक समुदाय स्वयं बनाया करता था। व्यापारियों की अपनी श्रेणियां और संगठन होते थे जो नियम बनाते थे। हमारे स्रोतों में इस प्रकार के संगठनों का उल्लेख मिलता है। गुजरात में इन्हें **महाजन** कहा जाता था। 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हम अहमबाद में 53 महाजनों का उल्लेख पाते हैं। एक खास इलाके और खास वस्तु के व्यापार करने वाले व्यापारी अपने को **महाजन** में संगठित करते थे। इसमें कोई जातिगत बंधन नहीं होता था। कभी-कभी बड़े व्यापारियों के लिए भी महाजन शब्द का प्रयोग संभवतः इसलिए होता था क्योंकि वे अपने संगठन के प्रधान हुआ करते थे। व्यावसायिक वर्गों के कई जाति आधारित संगठन भी मौजूद थे।

शहर के सबसे प्रभुत्वशाली और धनाड्य व्यापारी को **नगर सेठ** कहा जाता था। कभी-कभी यह पद अनुवांशिक भी माना जाता था। **नगर सेठ** राज्य और व्यापारिक समुदाय के बीच एक कड़ी के रूप में कार्य करता था। व्यापारियों के बीच के मतभेदों और झगड़ों को सुलझाने में महाजन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। आमतौर पर उसके निर्णय का सम्मान किया जाता था। मुगल प्रशासन ने भी इन महाजनों को मान्यता प्रदान की और मतभेद तथा संघर्ष की स्थिति में उनकी सहायता ली। अक्सर प्रशासनिक नीतियों के लिए भी उनकी मदद मांगी जाती थी। व्यापारिक संगठन मजबूत हुआ करते थे और शहर और बंदरगाहों में अधिकारियों के अत्याचारों या दुर्व्यवहार का विरोध किया करते थे। प्रशासनिक कार्यवाहियों के खिलाफ व्यापारिक संगठनों द्वारा हड़ताल (व्यापारिक प्रतिष्ठानों और दुकानों को बंद करना) किए जाने का भी कई जगह उल्लेख मिलता है। राजस्व में बहुत नुकसान के कारण प्रशासकों को इस संयुक्त विरोध के आगे अक्सर झुकना पड़ता था। एक ऐसा ही गंभीर संघर्ष 1669 ई. में सूरत में हुआ। यहां नये राज्यपाल के अत्याचार के विरोध में व्यापारियों ने अपने परिवार समेत (लगभग 8000 लोग) सूरत छोड़ दिया। वे भड़ौंच में बस गए और सम्राट औरंगजेब के पास याचिका भेजी। पूरे शहर की व्यापारिक गतिविधि ठप्प पड़ गई। सम्राट ने शीघ्रता से हस्तक्षेप किया और समस्या को सुलझाया।

1639 ई. में शाहजहां ने सूरत के एक बड़े व्यापारी वीरजी वोहरा को सूरत के राज्यपाल के विरुद्ध व्यापारियों की शिकायतें सुनने के लिए बुलाया। उत्तराधिकार के लिए हो रहे युद्ध के समय शाहजहां के बेटे मुराद ने अहमदाबाद के नगर सेठ शांतिदास के माध्यम से 5,50,000 रुपये उगाहे थे। मुराद की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने इसके भुगतान की जिम्मेदारी ली।

इतनी विशाल सम्पदा (कहा जाता है कि वीरजी वोहरा अपनी मृत्यु के समय 80,00,000 रुपये की सम्पत्ति छोड़ गया था) के बावजूद व्यापारी राजनीति में ज्यादा रुचि नहीं लेते थे।

व्यापारी दरबार की राजनीति से दूर रहते थे पर सामंत वर्ग व्यापार में हिस्सा लेता था। कई बड़े सरदार व्यापार में मुनाफा कमाने के लिए अपने पद का सहारा लेते थे।

शाइस्ता खां ने कई वस्तुओं, खासकर शोरा, पर एकाधिकार स्थापित करने की कोशिश की। मीर जुमला एक हीरा व्यापारी था। निचले स्तर के अधिकारी भी व्यापारिक गतिविधियों में शामिल थे और ज़ोर-जबरदस्ती का रास्ता अपनाते थे। अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार संबंधी इकाई में भी कुलीनों के व्यापार में शामिल होने के पक्ष पर विचार किया गया है।

बोध प्रश्न 3

1) **हुंडी** पर पांच पंक्तियां लिखिए :

....

....

....

....

....

2) निम्नलिखित में से प्रत्येक पर तीन पंक्तियां लिखिए :

i) ब्याज की दर :

....

....

....

ii) बीमा :

....

....

....

....

iii) व्यापारियों के व्यावसायिक संगठन पर पांच पंक्तियां लिखिए :

....

....

....

....

....

24.5 सारांश

इस इकाई में हमने व्यापार में संलग्न कई विशेषीकृत समुदायों की गतिविधियों का अध्ययन किया। प्रांतीय और अंतर्प्रांतीय स्तर पर कई वस्तुओं के व्यापार में बंजारों की भूमिका महत्वपूर्ण होती थी। वे अपने पशुओं के साथ घूम-घूम कर व्यापार करते थे और मुख्य रूप से अनाज, नमक, चीनी आदि की खरीद बिक्री करते थे।

देश के विभिन्न हिस्सों में कई प्रकार के व्यापारिक समुदाय और जातियां मौजूद थीं। बनिया, वोहरा, खत्री, चेट्टी, कोमाति, आदि प्रमुख व्यापारी समुदाय थे। विदेशी व्यापारियों में अंग्रेज, डच, फ्रांसीसी, पुर्तगाली, अरमेनियन, खुरासानी और इराकी प्रमुख थे।

दलाल, सर्राफ और महाजन विशेषीकृत वाणिज्यिक समुदाय थे। हुंडी और ऋण देने की प्रथा पूर्ण रूप से विकसित थी। ब्याज की दर कुछ अधिक थी।

व्यापारिक श्रेणियां और संगठन पूर्ण रूप से स्थापित थे। व्यापारिक और वाणिज्यिक गतिविधियों के लिए आमतौर पर वे ही नियम और कानून बनाया करते थे।

24.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) बंजारे मुख्य रूप से अनाज, नमक, चीनी आदि का व्यापार करते थे। वे बड़े समुदाय में रहते थे। विस्तार के लिए 24.2.1 उपभाग देखिए।

मारवाड़ी, वोहरा, मुल्तानी, चेटटी, कोमाति आदि विभिन्न व्यापारिक समुदाय थे। इनके कार्यक्षेत्र के लिए 24.2.1 उपभाग देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) **सर्राफ** मुद्रा विनिमयकर्ता, ऋणदाता के रूप में कार्य करते थे और सिक्के की शुद्धता की जांच करते थे। देखिए उपभाग 24.4.2

2) वाणिज्यिक लेनदेन में **दलाल** मध्यस्थ की भूमिका निभाता था। विभिन्न कोटियों के लिए उपभाग 24.2.4 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) **हुंडी** धन स्थानांनतरित करने का एक आसान और सुरक्षित माध्यम था। विस्तार के लिए उपभाग 24.3.1 देखिए।

2) दोनों प्रथाओं के लिए उपभाग 24.3.3 और उपभाग 24.3.5 देखिए।

3) अपने हितों की रक्षा के लिए व्यापारी अपना संगठन बनाते थे और अपने नियम एवं कानून स्वयं बनाते थे। विस्तार के लिए देखिए भाग 24.4.1